Toppersnotes
Unleash the topper in you

UGC-NET

समाजशास्त्र

NATIONAL TESTING AGENCY (NTA)

पेपर - 2 || भाग - 3

SIERRA INNOVATIONS

UGC NET

समाजशास्त्र

विषय-सूची

Unit - 7		Page No.
1.	सामाजिक एवं सांस्कृतिक पारिस्थितिकी	1
2.	कृषि और जैव विविधता	8
3.	विकास, विस्थापन, आपदा एवं सामुदायिक प्रक्रियाएँ	19
4.	पर्यावरण प्रदुषण, जलवायु परिवर्तन और दिव्यांगता	36
Unit – 8		
1.	विवाह	84
2.	परिवार एवं परिवार में आधुनिक परिवर्तन	107
3.	सैद्धान्तिक उपागमः- संरचना एवं प्रकार्य, बन्धन और संस्कृति	132
4.	लिंग एवं समाज	142
5.	घरेलू हिंसा, महिलाओं के विरुद्ध अपराध एवं ऑनर फिलिंग	153
Unit – 9		
1.	प्रौद्योगिकी विकास	164
2.	प्रौद्योगिकी के विविध रूप और डिजिटल डिवाइड तथा समविशन	184
3.	खाद्य प्रौद्योगिकी का विकास	201
Unit – 10		
1.	सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य – विविध रूप	206
2.	सांप्रदायिकता एवं धर्मनिरपेक्षता	216
3.	शिक्षा, कला और सौन्दर्यबोध विज्ञान, आचारशास्त्र एवं नैतिकता	240

Unit - 7

सामाजिक एवं सांस्कृतिक पारिस्थितिकी
(Social and Cultural Ecology)

सामाजिक एवं सांस्कृतिक पारिस्थितिकी के अन्तर्गत पर्यावरण और समाज के अन्तर्सम्बन्धों तथा इन अन्तर्सम्बन्धों से उत्पन्न विभिन्न संस्कृतियों का अध्ययन किया जाता है । यह बदलते परिवेश में पर्यावरण व समाज को समझने में सहायता करता है । इसमें मुख्य रूप से सामाजिक पारिस्थितिकी, सांस्कृतिक पारिस्थितिकी व उनके विविध रूप, प्रौद्योगिकी परिवर्तन का प्रभाव, जैव विविधता तथा लिंग और पर्यावरण आदि के अध्ययन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।

सामाजिक और सांस्कृतिक पारिस्थितिकी : विविध रूप
(Social and Cultural Ecology: Diverse Forms)

समाज और पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्धों से उत्पन्न विभिन्न संस्कृतियों का अध्ययन सांस्कृतिक पारिस्थितिकी कहलाता है अर्थात् सांस्कृतिक पारिस्थितिकी सामाजिक और भौतिक वातावरण में मानव अनुकूलन का अध्ययन है । उल्लेखनीय है कि मानव अनुकूलन जैविक और सांस्कृतिक दोनों प्रक्रियाओं को सन्दर्भित करता है, जो मानव के बदलते परिवेश में जीवित रहने तथा पुनः उत्पन्न करने में सक्षम बनाता है । इस प्रकार प्राकृतिक पर्यावरण समाज, सामाजिक संगठन एवं अन्य मानव संस्थानों के लिए एक प्रमुख योगदान होता है ।

सामाजिक और सांस्कृतिक पारिस्थितिकी के विविध रूपों को इस प्रकार समझा जा सकता है । उदाहरणस्वरूप जब राजनीतिक अर्थव्यवस्था के अध्ययन को राजनीतिक के रूप में जोड दिया जाता है, तो वह राजनीतिक पारिस्थितिकी बन जाता है । वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पारिस्थितिकी का अध्ययन आवश्यक एवं अपरिहार्य है ताकि समाज का अध्ययन वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत ढंग से पूर्ण हो सके । समाज तथा पारिस्थितिकी एक-दूसरे के पूरकतथा अभिन्न अंग हैं एवं एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व अपूर्ण है । अतःसामाजिक पारिस्थितिकी और सांस्कृतिक पारिस्थितिकी का अध्ययन अन्तर्सम्बन्ध की दृष्टि से आवश्यक है ।

सामाजिक पारिस्थितिकी (Social Ecology)

''सामाजिक पारिस्थितिकी वह विज्ञान है जो किसी समुदाय पर भौतिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक दशाओं के प्रभाव का अध्ययन करता है ।' समाजशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक पारिस्थितिकी विभिन्न समुदायों तथा के पर्यावरण के सम्बन्ध का अध्ययन है ।''

ऑगबर्न निमकॉफ के अनुसार, ''मानव पारिस्थितिकी मानव प्राणियों तथा उनके पर्यावरण के आपसी संबंध को स्पष्ट करती है ।''

सामाजिक पारिस्थितिकी के तत्व

मैकेन्जी ने सामाजिक पारिस्थितिकी के तत्वों को चार मुख्य भागों में विभाजित किया है–

- पर्यावरण –सामाजिक पारिस्थितिकी का पहला तत्व पर्यावरण है इसका सम्बन्ध उन सभी भौगोलिक और सांस्कृतिक तत्वों से है जो समुदाय की संरचना तथा व्यक्तियों के व्यवहारों को प्रभावित करते है । उदाहरण के लिए, जलवायु, तापक्रम, खनिज पदार्थ, भूमि की बनावट, भूमि का उपजाऊपन, समुद्र तथा नदियाँ आदि भौगोलिक तत्व है । दूसरी ओर धार्मिक नियम, विश्वास, प्रथाएँ, परम्पराएँ तथा व्यक्तियों द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुएँ सांस्कृतिक तत्व है ।
- जनसंख्या –समाज के निर्माण में जनसंख्या की विशेषताओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है । इसके अन्तर्गत जनसंख्या का आकार, जनसंख्या का घनत्व, स्वास्थ्य सम्बन्धी विशेषताएँ जन्म दर तथा मृत्यु दर, जनसंख्या में समरूपता अथवा विभिन्नता आदि मुख्य तत्व है ।
- बसाहट का स्वरूप –बसाहट या अधिवास के स्वरूप का आशय केवल मकानों की बनावट से ही नहीं है बल्कि रहने के स्थान के चारों ओर की परिस्थितियों, रहन–सहन का ढंग तथा जीवन–स्तर का भी मानव बसाहट से महत्वपूर्ण सम्बन्ध होता है ।
- अर्थव्यस्था मानव की पारिस्थितिकी में आर्थिक व्यवस्था का विशेष महत्व है, क्योंकि कोई समुदाय जीवन–यापन के लिए पशुओं के शिकार पर निर्भर होता है, कहीं खेती के द्वारा जीविका उपर्जित की जाती है, कोई समुदाय दस्तकारी पर निर्भर होता है, जबकि किसी समुदाय में विकसित श्रम–विभाजन और विशेषीकरण के द्वारा आर्थिक क्रियाएँ की जाती है ।

सामाजिक पारिस्थितिकी की विचारधारा

सामाजिक पारिस्थितिकी की विचारधारा यह बताती है कि सामाजिक सम्बन्ध, मुख्य रूप से सम्पत्ति तथा उत्पादन के संगठन पर्यावरण की सोच तथा प्रयास को एक आकार देते है । भिन्न सामाजिक वर्ग भिन्न प्रकार से पर्यावरण सम्बन्धित मामलों को देखते तथा समझते है । वन्य विभाग, जो ज्यादा से ज्यादा राजस्व प्राप्त करने हेतु अधिक मात्रा में बाँस का निर्माण उद्योग के लिए करेगा । वह इसे बाँस के टोकरे बनाने वाले कारीगर के बाँस उपयोग से भिन्न रूप में देखेगा । इस अर्थ में उसका दृष्टिकोण कारीगर दृष्टिकोण से अलग होगा हालाँकि दोनों बाँस का प्रयोग कर रहे है । का अपनी–अपनी रुचियाँ तथा विचारधाराएँ पर्यावरण सम्बन्धी मतभेद उत्पन्न कर देती है । इस अर्थ में पर्यावरण संकट की जडें सामाजिक असमानताओं में देखी जा सकती है । इस प्रकार से पर्यावरण सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने का एक तरीका है । पर्यावरण तथा समाज के आपसी सम्बन्धों में परिवर्तन का अर्थ है विभिन्न समूहों के बीच सम्बन्धों में परिवर्तनय जैसे–पुरुष तथा स्त्री, ग्रामीण तथा शहरी लोग, जमींदार तथा मजदूर । सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन विभिन्न ज्ञान व्यवस्थाओं और भिन्न ज्ञानतन्त्र को जन्म देता है, जो पर्यावरण का प्रबन्धन सुचारु रूप से करता है । अतः सामाजिक पारिस्थितिकी समाज पर्यावरण के मध्य अन्नोन्य क्रिया, अन्तर्सम्बन्धों आदि का अध्ययन करता है ।

सांस्कृतिक पारिस्थितिकी (Cultural Ecology)

सांस्कृतिक पारिस्थितिकी सामाजिक और भौतिक पर्यावरण में मानव अनुकूलन का अध्ययन है अर्थात् सांस्कृतिक पारिस्थितिकी में समाज तथा पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्धों से उत्पन्न विभिन्न संस्कृतियों; जैसे–रहन–सहन, खान–पान आदि का अध्ययन किया जाता है । सांस्कृतिक परिस्थितियों में ज्ञात क्रियाओं से सम्बन्धित भू–दृश्य की अवस्थाओं, भू–दृश्य विकास में संलग्न मानव क्रियाओं, सांस्कृतिक एवं सामाजिक तत्वों से सम्बन्धित भूमि उपयोग, जीवन–यापन की दशाओं तथा मानव–कल्याण से सम्बन्धित स्थितियों का अध्ययन किया जाता है ।

- रावेण्ट्री के अनुसार, ''Culture ecology describes the cause andeffect interplay between culture and environment-"
- हैकल के अनुसार, ''जब किसी क्षेत्र विशेष में जीवों तथा पर्यावरण केबीच सामंजस्य प्रक्रिया होती है, तब उसे पारिस्थितिकी की संज्ञा दी जाती है । सांस्कृतिक भूगोलवेत्ताओं ने पारिस्थितिकी विज्ञान में मानव समुदाय तथा प्राकृतिक पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्धों, मानव के क्रियात्मक के प्रभाव आदिके अध्ययनों को सम्मिलित किया है ।''

सांस्कृतिक पारिस्थितिकी का विकास तथा विचार

- मानव विज्ञानी जूलियन स्टीवर्ड (1902–1972) ने सांस्कृतिक पारिस्थितिकी शब्द को विकसित किया । इन्होंने यह समझाने का प्रयास किया कि किस प्रकार मनुष्य पर्यावरण के विभिन्न प्रकारों से अनूकूलित होते हैं ।
- इनके सांस्कृतिक सिद्धान्तों में परिवर्तन के अन्तर्गत बहुभाषी विकास की पद्धति (1955), सांस्कृतिक पारिस्थितिकी ''पर्यावरण परिवर्तन के लिए संस्कृति द्वारा प्रेरित होने के तरीकों आदि का प्रतिनिधित्व करती है ।''
- स्टीवर्ड ने माना कि मानव अनकलन मनुष्यों को ऐतिहासिक विरासत के रूप में मिला है और इसमें प्रौद्योगिकियाँ, प्रथाएँ और ज्ञान लोगों को एक वातावरण में रहने की अनुमति प्रदान करता है ।
- स्टीवर्ड पर्यावरण एवं मानव संस्कृतियों के अन्तर्सम्बन्धों एवं तकनीकी प्रभावों को देखने पर बल देता है । उनका मानना था कि सांस्कृतिक, व्यवहार से यह भी स्पष्ट होता है कि पर्यावरण तथा तकनीकी संस्कृतिक पहलुओं को कितना प्रभावित करती है और इसका मूल्यांकन सम्भव ही पाता है ।
- 20वीं शताब्दी के मध्य में सांस्कृतिक पारिस्थितिकी की स्टीवर्ड का अवधारणा मानव विज्ञानी और पुरातत्वविदों के मध्य व्यापक हो गयी ।
- वर्ष 1960 के दशक में प्रक्रियात्मक पुरातत्व के विकास में सांस्कृतिक पारिस्थितिकी केन्द्रीय सिद्धान्तों और ड्राइविंग कारकों में से एक थी, क्योंकि पुरातत्वविदों ने प्रौद्योगिकी के ढाँचे और पर्यावरणीय अनूकूलन पर इसके प्रभावों के माध्यम से सांस्कृतिक परिवर्तन को समझा ।

इस प्रकार स्टीवर्ड ने वातावरण तथा मानव संस्कृति के विकास को समझाने का प्रयास किया । साथ ही यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि पर्यावरण, मानव की संस्कृति को किस प्रकार प्रभावित करता है ।

सांस्कृतिक पारिस्थितिकी सम्बन्धी महत्वपूर्ण तथ्य

- सांस्कृतिक पारिस्थितिकी पर्यावरण से सम्बन्धित अवधारणा है ।
- सांस्कृतिक पारिस्थितिकी समाज की संस्कृति को बनाए रखने हेतु एवंएक पीढी से दूसरी पीढी में हस्तान्तरित होने में सहायक कारक सिद्ध होती है ।
- सांस्कृतिक पारिस्थितिकी से विभिन्न प्रकार के सामाजिक व सामूहिकआदर्शों का निर्माण होता है ।
- सांस्कृतिक पारिस्थितिकी मानव पर्यावरण के साथ अनुकूलित होना सीखता है ।
- मानव अस्तित्व को समन्वयपूर्वक बनाए रखने में भी सांस्कृतिकपारिस्थितिकी महत्वपूर्ण होता है ।
- मानव के सामाजिक गुणों का विकास भी सांस्कृतिक पारिस्थितिकी की उपज मानी जाती है ।
- मानव की जैविक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सांस्कृतिकपारिस्थितिकी एक पूरक की भाँति कार्य करती है ।

भारतीय समाज : सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश

भारतीय समाज एवं संस्कृति मानव समाज की एक अमूल्य निधि है । यदि संसार की कोई संस्कृति अमर कही जा सकती है, तो वह निसन्देह भारतीय संस्कृति है । भारतीय समाज ने पर्यावरण के साथ लम्बी अवधि से समन्वय स्थापित कर एवं अनुकूलित होकर सांस्कृतिक पारिस्थितिकी के अन्तर्गत अन्तर्सम्बन्धित होकर विभिन्न सामाजिक संस्कृतियों को स्थापित किया है, जो विभिन्न रूपों में आज भी जीवित है । अतः ऐसी प्रमुख संस्कृतियाँ निम्नलिखित है

- <u>प्राचीनता एवं स्थायित्व</u> भारत की संस्कृति एवं समाज व्यवस्था विश्वकी प्राचीनतम संस्कृति व्यवस्था है । मिस्र, सीरिया, बेबीलोनिया, यूनान, रोम और भारत की संस्कृतियाँ विश्व की प्राचीनतम् संस्कृतियों में से एक है । हजारों वर्ष बीत जाने पर भी भारत की आदि संस्कृति व समाज-व्यवस्था अभी भी जीवित है । आज भी हम वैदिक धर्म को मानते है । आज भी वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करते है । आज भी विवाह वैदिक रीति से होता है । ग्राम पंचायत, जाति व्यवस्था, संयुक्त परिवार आज भी जीवित है । अध्यात्मवाद प्रकृति पूजा, धर्म, सत्य, अहिंसा और अस्तेय के सिद्धान्तों की गूंज आज भी समाज को प्रेरित करती है ।

- <u>सहिष्णुता</u>-भारत समाज एवं संस्कृति की अन्य विशेषता इसकी सहिष्णुता है । भारत में सभी धर्मों जातियों, प्रजातियों एवं सम्प्रदायों के प्रति उदारता सहिष्णुता एवं प्रेमभाव पाया जाता है । किसी के प्रति कठोरता या द्वेष भाव नहीं । हमारे यहाँ समय-समय पर अनेक विदेशी संस्कृतियों का आगमन हुआ और यहाँ सभी को फलने-फूलने का अवसर मिला । अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक दोनों की संस्कृतियाँ समान रूप से विद्यमान है ।

- <u>समन्वय</u>-भारतीय समाज एवं संस्कृति की उदार एवं सहिष्णुप्रकृति केकारण ही इसमें विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय पाया जाता है । उल्लेखनीय है कि कुछ संस्कृतियाँ विलीन हो गई है और कुछ दूसरे रूपों में समन्वय के साथ संचालित है ।

- अध्यात्मवाद–भारतीय समाज एवं संस्कृति में अध्यात्मवाद को महत्व दिया जाता है । भौतिक सुख और भोग विलास (लिप्सा) कभी भी जीवन का ध्येय नहीं माना गया । आत्मा और ईश्वर के महत्व को स्वीकार किया गयाऔर शारीरिक सुख के स्थान पर मानसिक और आध्यात्मिक आनन्द को सर्वोपरि माना गया है ।
- धर्म की प्रधानता–भारतीय समाज एवं संस्कृति धर्म प्रधान है । धर्म के द्वारा मानव जीवन के प्रत्येक व्यवहार को नियन्त्रित करने का प्रयास किया जाता है । भारतीय धर्म संकुचित नहीं वरन् मानवतावादी धर्म है । यह सभी जीवों के कल्याण, क्षमा और दया में विश्वास करता है ।
- अनुकूलनशीलता–भारतीय समाज एवं संस्कृति को अमर बनाने में इसकी अनुकूलनशील प्रकृति का विशेष योगदान है । इसमें समय के साथ परिवर्तित होने की क्षमता है । भारतीय परिवार, जाति, धर्म एवं संस्थाएँ समय के साथ अपने के अनुकूल बनाती रहती है ।
- वर्णाश्रम व आश्रम व्यवस्था–भारतीय समाज की मुख्य विशेषताओं में वर्णाश्रम व आश्रम व्यवस्था भी शामिल है । समाज में श्रम विभाजन हेतु चार वर्णो–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र की रचना की गई । प्राचीन भारतीय मनीषियों ने मनुष्य की आयु 100 वर्ष मानकर उसका चार आश्रमों–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास में समान रूप से विभाजन किया है । जहाँ वर्ण व्यक्तियों के बीच कार्य–विभाजन को प्रकटकरते हैं वहीं आश्रम उसके मानसिक व आध्यात्मिक विकास को ।
- कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त–भारतीय समाज में कर्म एवं पुनर्जन्म कोअधिक महत्व दिया जाता है । यह माना जाता है कि अच्छे कर्म का अच्छा फल और बुरे कर्म का बुरा फल मिलता है । भारत में व्यक्ति की आत्मा को अजर अमर माना गया है । मरने के बाद पुनरू वह किस योनि में जन्म लेगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसने पिछले जन्म में किस प्रकार के कर्म किए हैं ।
- पुरुषार्थ–पुरुषार्थ सिद्धान्त के द्वारा व्यक्ति के जीवन के चार प्रमुख लक्ष्यों को स्पष्ट किया गया है । ये चार लक्ष्य हैं–धर्म, अर्थ, काम, मोक्षा इन्हें ही चार पुरुषार्थ माना गया है ।
- संस्कार–संस्कार का तात्पर्य शुद्धिकरण की प्रक्रिया से है । भारतीय समाज एवं संस्कृति में व्यक्ति को सामाजिक प्राणी बनाने, उसके व्यक्तित्व का विकास करने एवं उसकी नैसर्गिक प्रवृत्तियों को समाजोपयोगी बनाने के लिए व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और नैतिक परिष्कार आवश्यक माना गया है ।
- जाति–व्यवस्था–भारतीय समाज एवं संस्कृति में जाति–व्यवस्था का प्रमुख स्थान है । जिसके आधार पर सम्पूर्ण समाज को कई छोटे–छोटे उप–भागी में विभाजित किया गया है । जाति की सदस्यता जन्म से प्राप्त होती है । प्रत्येक जाति की समाज में अपनी एक विशिष्ट स्थिति होती है ।
- विविधता में एकता–भारतीय संस्कृति की एक अनुपम व्यवस्था यह है–विविधता में एकता । यहाँ भाषा, धर्म, जाति, भौगोलिक पर्यावरण, जनसंख्या प्रजाति, जनजाति के आधार पर अनेक विभिन्नताएँ व्याप्त हैं, फिर भी उनमें एकता के दर्शन होते हैं । भारत में विविधता में एकता का उल्लेख अनेक रूपों में देखने को मिलता है ।सिंचाई के उन्नत साधनों ने भी कृषि उत्पादन में काफी योगदान दिया है । जिसने किसानों के आर्थिक जीवन को उन्नत बनाया है । मशीनों के प्रयोग से व्यक्ति को कृषि कार्यों में अन्य व्यक्तियों के सहयोग की कम आवश्यकता पडती है, जिसके कारण सामूहिकता का ह्रास हो रहा है । अब कृषि के क्षेत्रों में अनेक देशों में उत्पादन इतना बढ गया है कि उनके सामने बाजारों की समस्या उत्पन्न होने लगी है । अब ग्रामीण क्षेत्रों में सम्बन्धों में घनिष्ठता की बजाय कृत्रिमता पनपने लगी है ।

- उत्पादन प्रणाली व सामाजिक परिवर्तन–उत्पादन प्रणाली भी एक प्रमुख प्रौद्योगिकी कारक है जिसने समय–समय पर सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक संरचना को बदला है । वर्तमान में नगरीय क्षेत्रों में बडे पैमाने पर फैक्ट्रियों में मशीनों की सहायता से उत्पादन होने लगा है । अब हाथ से काम करने का महत्व कम हुआ है । अब मशीनें चलाने वाले प्रशिक्षित व्यक्तियों का महत्व बढा है । श्रम–विभाजन और विशेषीकरण अधिक हुआ है । प्रतिस्पर्धा और संचार का महत्व बढा है । विशाल–नगरों की स्थापना हुई है । मशीनों के युग में जीवन भी यन्त्रवत् हो गया है । उत्पादन की नवीन प्रणाली ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक यहाँ तक कि सांस्कृतिक जीवन को भी काफी बदल दिया है ।
- अणु शक्ति पर नियन्त्रण एवं सामाजिक परिवर्तन–मानव के उद्देश्यों की पूर्ति में झुण शक्ति का प्रयोग एक युग प्रवर्तक खोज है । आधुनिक विज्ञान की अन्य खोजों के समान अणु शक्ति का प्रयोग भी रचनात्मक एवं विनाशक दोनों ही रूपों में किया जाता है । जहाँ एक ओर अणु शक्ति का प्रयोग मानव की सुख–समृद्धि को बढाने में किया जाता है, वहीं दूसरीओर इसका प्रयोग मानव विनाशक के रूप में भी किया जाता है ।

प्रौद्योगिकी के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव

प्रौद्योगिकी के प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव इस प्रकार है

प्रौद्योगिकी के प्रत्यक्ष प्रभाव प्रौद्योगिकी के प्रत्यक्ष प्रभाव निम्न है

- श्रम विभाजन एवं कार्यों का विशेषीकरण–प्रौद्योगिकी परिवर्तन केफलस्वरूप अब उत्पादन विशालकाय कारखानों में होने लगा है । कारखानों में अलग–अलग कार्यों के लिए अलग–अलग व्यक्तियों की आवश्यकता होती है । व्यक्तियों को उनका कार्य उनकी योग्यता और प्रशिक्षण के आधार पर दिया जाता है । इस प्रकार श्रम–विभाजन के साथ–साथ विशेषीकरण को बढावा मिलता है ।
- श्रमिक संगठनों का निर्माण–आज कारखाना प्रणाली के फलस्वरूप कारीगर मजदूरों के रूप में बदल गए है । अब कार्य के घण्टे, तनख्वाह (वेतन या मजदूरी), कार्य की दशाएँ आदि निश्चित किए जाते है । मिल मालिक अपने लाभ के लिए श्रमिकों का शोषण करते है । परिणामस्वरूप शोषण के विरुद्ध श्रमिक संगठित होने लगे और अनेक श्रमिक संघों का निर्माण हुआ ।
- नगरीकरण–जब उत्पादन फैक्ट्री प्रणाली द्वारा होने लगा, तो ग्रामों से बहुत से लोग कार्य की तलाश में नगर आने लगे । परिणामस्वरूप नगरों की जनसंख्या तेजी से वृद्धि हुई है । प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप नगरीकरण की प्रक्रिया तेज हुई है और इन दोनों ने सामाजिक जीवन को अगणित रुप में परिवर्तित कर दिया है ।
- गतिशीलता–प्रौद्योगिकी परिवर्तन ने स्थानीय और सामाजिक दोनों ही प्रकार की गतिशीलता को बढाने में योगदान दिया है । वर्तमान में नवीन प्रौद्योगिकी के कारण आवागमन और संचार के साधनों में वृद्धि हुई है ।लोग विभिन्न स्थानों, समूहों, वर्गों, व्यवसायों से सम्बन्धित होने लगे है जो उन्हें गतिशीलता के नए आयाम प्रदान करती है ।

- सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन–प्रौद्योगिकी के परिणामस्वरूप सामाजिक सम्बन्धों का स्वरूप काफी बदल गया है । सम्बन्धों में जटिलता बढ गई है । आज सम्बन्ध आवश्यकता मूलक हो गए हैं । सम्बन्धों में औपचारिकता पाई जाती है । द्वितीयक सम्बन्धों का महत्व बढा है । प्रौद्योगिकी ने कार्यात्मक, अप्रत्यक्ष तथा औपचारिक सम्बन्धों को बढावा दिया है ।

प्रौद्योगिकी के अप्रत्यक्ष प्रभाव

प्रौद्योगिकी के अप्रत्यक्ष प्रभाव निम्न है

- प्रतिस्पर्द्धा का बढना–नवीन प्रौद्योगिकी ने जहाँ श्रम–विभाजन और विशेषीकरण बढाया है वहीं प्रतिस्पर्धा में भी वृद्धि की है । आज शिक्षा नौकरियों और व्यापार के विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा दिखाई देती है । इसके परिणामस्वरूप बढती हुई प्रतिस्पर्धा ने आर्थिक सम्बन्धों के साथ–साथ सामाजिक सम्बन्धों के क्षेत्र को अन्तर्राष्ट्रीय बना दिया है ।
- विभिन्न वर्गों का उदय–प्रौद्योगिकी ने विभिन्न नवीन आर्थिक वर्गों के निर्माण द्वारा सामाजिक संरचना को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । नवीन प्रौद्योगिकी ने साधन–सम्पन्न लोगों को पूँजीपति बनने का अवसर दिया तथा दूसरी ओर लाखों करोडों लोगों को श्रमिक वर्ग में डाल दिया । परिणामस्वरूप पूँजीपति व श्रमिक वर्ग का निर्माण हुआ । इन दोनों के मध्य में आने वाले वर्ग को मध्यम वर्ग कहा गया ।
- बेकारी का बढना–नवीन प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत श्रम की बचत करने वाली मशीनों का आविष्कार हुआ है । एक मशीन कुछ घण्टों में ही इतना काम कर सकती है जितना एक व्यक्ति महीनों नहीं कर सकता । परिणामस्वरूप नवीन प्रौद्योगिकी ने कुटीर उद्योगों को चौपट कर दिया है, जिसने गरीबी को बढावा दिया है ।
- पारिवारिक जीवन में परिवर्तन–प्रौद्योगिकी परिवर्तन ने विवाह और परिवार के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं । नवीन प्रौद्योगिकी ने व्यक्तिवादिता को बढाया है । व्यक्तिवादी और स्वार्थी मनोवृत्ति के कारण संयुक्त परिवार नाभिक परिवार में बदल रहे हैं । नवीन प्रौद्योगिकी ने स्त्रियों के कार्यों को हल्का किया है । स्त्री–शिक्षा और रोजगार के अवसर बढे हैं । प्रौद्योगिकी परिवर्तन का प्रभाव विवाह संस्था पर भी पडा है । अबप्रेम–विवाह, विलम्ब–विवाह, अन्तर्जातीय विवाह होने लगे हैं ।
- सामाजिक धार्मिक परिवर्तन–नवीन प्रौद्योगिकी ने व्यक्ति के मूल्यों विश्वासों, आदर्शों आदि को परिवर्तित कर उसे जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण प्रदान किया है । अब व्यक्ति व्यक्तिवादी जीवन में अधिक रुचि लेता है । इसी के साथ नवीन प्रौद्योगिकी ने ज्ञान–विज्ञान, तर्क और विवेक के महत्व को बढाकर धर्म के रूढिवादी पक्ष को कमजोर कर दिया है । आज धर्म के उदारवादी और मानवतावादी पक्ष पर अधिक जोर दिया जाने लगा है ।

प्रौद्योगिकी के सम्बन्ध में वेबलिन के विचार

वेबलिन परिवर्तन के लिए प्रौद्योगिकी दशाओं को उत्तरदायी मानते हैं । मार्गन की तरह वेबलिन ने बताया है कि सामाजिक परिवर्तन का मुख्य स्रोत नयी प्रौद्योगिकी का विकास है । प्रत्येक समाज की संस्कृति का स्वरूप उस समाज के अन्तर्गत पाए जाने वाली प्रौद्योगिकी पर निर्भर करता है । उन्होंने बताया कि प्रौद्योगिकी तथा सामाजिक संस्थाओं के बीच हमेशा संघर्ष चलता रहता है ।

बेबिलिन का कहना है कि आविष्कार हमारी जरूरतों की उपज रही है । संस्थाओं और सामाजिक परम्पराओं का आधार समाज में पाई जाने वाली प्रौद्योगिकी है । समाज की जरूरतों के अनुसार प्रौद्योगिकी का जन्म होता है और नई प्रौद्योगिकी के उपयोग के लिए नई किस्म की योग्यता, आदतों एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है । उल्लेखनीय है कि पुरानी संस्थाएँ नई प्रौद्योगिकी से समन्वय नहीं बनाती । अतः परम्परागत संस्थाएँ व नई प्रौद्योगिकी पर आधारित मूल्यों के बीच समाज में संघर्ष होता है और इस संघर्ष में नए मूल्यों की जीत होती है । परम्परागत मूल्य व आदर्श बिखरने लगते है । नई मूल्यों की जीत इसलिए होती है कि समाज अपने आपको जीवित रखने या उन्नति के लिए नई प्रौद्योगिकी को अनिवार्य रूप से अपनाता है और इसी संघर्षमयी प्रक्रिया से धीरे-धीरे समाज के विभिन्न पहलुओं में परिवर्तन होता है ।

वेबलिन का सिद्धान्त मात्र संघर्ष पर आधारित नहीं है, बल्कि उनके विचारों में उदविकासीय सिद्धान्त के तत्व मौजूद है । वर्तमान प्रौद्योगिकी युग प्रौद्योगिक विकास के कई चरणों से गुजरा है । आदिमकाल के प्रौद्योगिकी का स्तर मध्यकालीन युग से बिल्कुल भिन्न है । जैसे-जैसे प्रौद्योगिकी का मानव आवश्यकताओं के अनुसार विकास होता गया, वैसे-वैसे मनुष्यों की आदतों, विचारों, मूल्यों एवं सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन होता गया ।

संक्षेप में कह सकते है कि मानव अपनी आदतों द्वारा नियन्त्रित होता है । आदतों का निर्माण भौतिक पर्यावरण व प्रौद्योगिकी के अनुसार होता है । अतः जब प्रौद्योगिकी एवं भौतिक पर्यावरण में परिवर्तन होता है, तो सामाजिक ढाँचे में भी परिवर्तन होता है, जो परिवर्तन का मुख्य आधार होता है ।

कृषि और जैव विविधता (Agriculture and Biodiversity)

यद्यपि कृषि जैव विविधता शब्द नया है, परन्तु इसकी अभिधारणा पुरानी है । यह किसानों, चरवाहों तथा मत्स्य पालनकर्ताओं द्वारा सावधानीपूर्वक किए गए चयन व खोजपूर्ण विकास का परिणाम है । यह मानव जाति द्वारा भोजन तथा कृषि के लिए महत्वपूर्ण विभिन्न जैविक सम्पदा के निरन्तर रख रखाव द्वारा सृजित होती है ।

इस प्रकार कृषि जैव विविधता जिसे एग्रो बायोडायवर्सिटी भी कहते है, के अन्तर्गत निम्नांकित को सम्मिलित किया जाता है; जैसे-फसलों की किस्में, पालतू, जानवरों, मछलियों की प्रजाति, जंगलों में उपलब्ध प्राकृतिक सम्पदा, जंगली क्षेत्र तथा जलीय पारिस्थितिकी तन्त्र आदि ।

कृषि का अर्थ (Meaning of Agriculture)

साधारण भाषा में कृषि का अर्थ फसल उत्पन्न करने की प्रक्रिया से है । फसल उत्पादन पशुपालन आदि की कला, विज्ञान और तकनीकों को कृषि कहते है । इसमें भूमि के उपयोग द्वारा फसल उत्पादन करने की क्रिया की जाती है । कृषि एक प्राथमिक कार्य है जिसका मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की पर्ति करना है । कृषि के अन्तर्गत भूमि उपयोग से जुडे सभी मानवीय कार्य सम्मिलित होते है । इसमें जीविकोपार्जन की प्रक्रिया में कृषि क्षेत्र का निर्माण, फसल उत्पादन, पशु पालन आदि की व्यवस्था से लेकर आज की विशिष्ट कृषि जो सुपर टेक्नोलॉजी से की जाती है, सम्मिलित किया जाता है ।

भारतीय कृषि की विशेषताएँ

भारतीय कृषि की विशेषताएँ निम्न प्रकार है

- निम्न उत्पादकता स्तर भारत में दूसरे देशों की तुलना में उत्पादन बहुतकम होता है, जिसका कारण भारत में उत्पादन की तकनीक भी है ।
- छिपी बेरोजगारी कृषि भारत में छिपी बेरोजगारी को सामने लाने वाला क्षेत्र है, क्योंकि भारत में सबसे ज्यादा छिपी हुई बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्रों में पाई जाती है ।
- वर्षा पर निर्भर भारत में मौसम के प्रति बहुत अधिक संवेदनशीलता पायी जाती है । भारतीय कृषि प्रधानता मानसून पर आधारित है क्योंकि आज भी कुल कृषि योग्य भूमि 41% में सिंचाई होती है ।
- पारम्परिक आगतों का प्रयोग भारत में आज भी किसान खेती के लिए वही पुराने तरीकों का प्रयोग कर रहे है, जबकि आज के समय में कई उन्नत किस्म की तकनीकें उपलब्ध है ।
- जीवन–निर्वाह भारत में आज भी किसान केवल कृषि जीवन निर्वाह दृष्टिकोण से ही करते है । इसका अर्थ यह है कि आज भी किसान कृषि का प्रयोग आजीविका के लिए करते है, व्यापार के लिए नहीं ।
- भूस्वामियों और भू जोतने वालों के बीच सम्बन्ध आज भी भारत में भू–स्वामियों और किसानों के मध्य सम्बन्ध अच्छे नहीं है और भूस्वामी, किसानों का शोषण कर रहे है । जिस कारण किसान खेती से दूर होते जा रहे है ।

भारतीय कृषि के प्रकार

कृषि के प्रकारों का विवरण निम्नलिखित है

- उतेरा कृषि यह फसल उगाने की पारम्परिक पद्धति है, जिसमें दूसरी फसलकी बुवाई पहली फसल के कटने के पूर्व ही कर दी जाती है । अन्य शब्दों में यह सघन कृषि (बहुफसली कृषि) का एक प्रकार है । इस प्रकार की कृषि के लिए दोमट (Loaf) मिट्टी सबसे उपयुक्त होती है । इसमें धान मुख्य फसल होती है, बाकी अन्य को इसके साथ उगाया जाता है । वर्तमान में बढती जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति में यह कृषि बहुत लाभदायक है ।
- शुष्क कृषि शुष्क कृषि (Dry Farming) मूलतः नाजुक, ऊँचे जोखिम वाली, कम उत्पादक कृषि पारिस्थितिक–तन्त्र से सम्बद्ध है । भारत के कृषि परिदृश्य में शुष्क क्षेत्रीय कृषि का विशिष्ट स्थान है । देश में ये वे कृषि क्षेत्र है, जहाँ वार्षिक वर्षा की मात्रा 75 सेमी से कम पाई जाती है । इस क्षेत्र का विस्तार 3,17,09,000 हेक्टेयर भूमि पर पाया जाता है, जिसमें देश के कृषि क्षेत्र का 22% भाग समाहित है । इसका 60% भाग राजस्थान, 20% भाग गुजरात एवं शेष पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश एवं कर्नाटक राज्यों में पाया जाता है । इन क्षेत्रों में वर्षा कम एवं अनिश्चित पाई जाती है, जिसके कारण ये क्षेत्र अक्सर सूखे की चपेट में आते रहते है । ज्वार, बाजरा, मक्का, कपास, मूंगफली, दालें एवं तिलहन इस क्षेत्र की मुख्य फसलें है । शुष्क कृषि के समुचित विकास हेतु अनेक कार्यक्रमों की शुरुआत की गई है । इसके अन्तर्गत वर्षा जल के वैज्ञानिक प्रबन्धन से लेकर भूमि विकास, वृक्षारोपण, पशुधन विकास आदि कार्यक्रम सम्मिलित है ।

- आर्द्र कृषि यह कृषि 75 सेमी से अधिक वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में की जाती है । इन क्षेत्रों में वर्षा ऋतु के अन्तर्गत वर्षा जल पौधों की जरूरत अधिक होता है । ये प्रदेश बाढ तथा मृदा अपरदन का सामना करते है । इन क्षेत्रों में वे फसलें उगाई जाती है, जिन्हें पानी की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है; जैसे–चावल, जूट, गन्ना, आदि तथा ताजे पानी की जल कृषि भी यहाँ की जाती है ।

- व्यापारिक कृषि यह कृषि भारतीय कृषि की एक नई विशेषता है विश्वीकरण (Globalisation) के प्रभाव के कारण कुछ क्षेत्रों में किसान गहन निर्वाह कृषि से व्यापारिक कृषि की ओर उन्मुख हुए है । यह व्यावसायिक उद्देश्य से की जाती है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय कृषि में कई परिवर्तन आए; जैसे– प्रौद्योगिकी का स्तर ऊँचा हुआ और चकबन्दी के परिणामस्वरूप खेत बडे तथा सुव्यवस्थित हो गए जिससे कृषि के मशीनीकरण में वृद्धि हुई ।

  किसान आर्थिक रूप से इतना समृद्ध हो गया कि वह रासायनिक उर्वरक तथा उत्तम बीज खरीद सके । उसके लिए सिंचाई, विद्युत तथा ऋण की व्यवस्था भी उपलब्ध करायी जाने लगी । प्रति हेक्टेयर तथा प्रति कृषक उपज में वृद्धि हुई । अतः हमारी कृषि आदिकालीन जीविका के दौर से बाहर निकल आई, परन्तु अब भी अधिकांश किसानों के पास बेचने के लिए अतिरिक्त उत्पाद नहीं बच पाते । इस प्रकार भारत के अधिकांश क्षेत्रों में अब भी जीविका के रूप में गहन कृषि ही की जाती है ।

- रोपण कृषि यह कृषि का प्रारम्भ ब्रिटिश कम्पनियों द्वारा औपनिवेशिक काल में शुरू किया गया, जिसमें केवल बाजार में बेची जाने वाली नकदी फसलों को उगाया जाता है । इसके अन्तर्गत रबड, चाय, कोला, मसालों, नारियल, कॉफी आदि की फसलें उगाई जाती है ।

- जैविक कृषि भारत में परम्परागत कृषि पूरी तरह से रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों पर आधारित है । ये विषाक्त तत्व हमारी खाद्य पूर्ति व जल स्रोतों में निरूसृत हो जाते है और हमारे पशुधन को हानि पहुँचाते है, साथ ही इस कारण मृदा की उर्वरता भी कम हो जाती है । अतः विकास की धारणीयता के लिए पर्यावरण मित्र प्रौद्योगिकी विकास के प्रयास अनिवार्य हो गए है । ऐसी ही एक प्रौद्योगिकी को जैविक कृषि (Organic Farming) कहा जाता है । संक्षेप में, जैविक कृषि खेती करने की वह पद्धति है, जो पर्यावरणीय सन्तुलन को पुनः स्थापित करके उसका संरक्षण और संवर्द्धन करती है । विश्वभर में सुरक्षित आहार की पूर्ति बढाने के लिए जैविक विधा से उत्पादित खाद्य पदार्थों की माँग में वृद्धि हो रही है । जैविक कृषि महँगे आगतों के स्थान पर स्थानीय रूप से बने जैविक आगतों के प्रयोग पर निर्भर होती है । ये आगत सस्ते रहते है और इसी कारण इन पर निवेश से प्रतिफल अधिक मिलता है ।

- प्रसंविदा कृषि कृषकों द्वारा किसी समझौते के तहत कृषि करना, जो उत्पादक (कृषक) तथा उत्पादन के क्रेता को लाभ पहुँचाए, प्रसंविदा कृषि (Contract Farming) कहलाता है । समझौते की शर्तों के अनुसार इसके अनेक मॉडल हो सकते है । सामान्यतः यह देखा जाता है कि प्रसंविदा का एक पक्ष तो किसान तथा दूसरा पक्ष कम्पनी या संस्था होती है, जो कृषि उत्पाद को एक निश्चित मूल्य (बाजार निर्धारित मूल्य) पर खरीदने का समझौता करती है तथा कृषक को उत्तम कोटि के बीज उर्वरक, सिंचाई, ऋण आदि की पूर्ति करती है । इस प्रकार इस स्थिति में कृषक अपने लिए नहीं, अपनी इच्छा से भी नहीं, बल्कि प्रसंविदा की दूसरी पार्टी के निर्देश पर उत्पादन करता है । इस स्थिति में किसानों को विशेष रूप से छोटे तथा सीमान्त किसानों को वे सभी सुविधाएँ मिल जाती है, जो उन्हें व्यक्तिगत स्थिति में प्राप्त नहीं हो पातीं । इसके अन्तर्गत कृषक को अच्छी गुणवत्ता का आगत, आवश्यकता पडने पर ऋण तथा उत्पाद के लिए सही मूल्य, सही समय पर बिना किसी कठिनाई के मिल जाता है ।

कृषि के अन्य प्रकार

कृषि के रूप	विशेषताएँ
झूम कृषि	पूर्वोत्तर क्षेत्र में, वनों को जलाकर की जाती है ।
गहन कृषि	कृषि आगतों का अधिक उपयोग ।
विस्तृत कृषि	बडे भूखण्डों (जोतों) में की जाने वाली कृषि ।
बागानी कृषि	पहाडी ढालों के सहारे बागानों की जाने वाली कृषि ।
जीवन-निर्वाह कृषि	जीवनयापन के उद्देश्य से ।
मिश्रित कृषि	कृषि के साथ पशुपालन
सतत कृषि	पारिस्थितिकी के सिद्धान्तों के अनुसार की जाने वाली कृषि ।
मिश्रित फसल	दो-या-दो से अधिक फसलों को एक साथ एक ही खेत में उगाना ।
अन्तराफसलीकरण	दो-या-दो से अधिक फसलों को एक साथ एक निश्चित पैटर्न पर उगाना ।
फसल चक्र	परिपक्वता के आधार पर विभिन्न फसल सम्मिश्रण के लिए फसल चक ।

भारत की फसल ऋतुएँ

भारत की भौतिक संरचना, जलवायविक (Climatic) एवं मृदा सम्बन्धी विभिन्नताएँ ऐसी है, जो विभिन्न प्रकार की फसलों की कृषि को प्रोत्साहित करती है । देश के उत्तरी एवं आन्तरिक भागों में तीन प्रमुख फसल खरीफ, रबी व जायद के नाम से जानी जाती है, जिनका वर्णन निम्न प्रकार है ।

- <u>खरीफ</u> ये वर्षा काल की फसलें है, जो जून-जुलाई में दक्षिण-पश्चिम मानसूनके प्रारम्भ होने के साथ बोई जाती है तथा सितम्बर-अक्टूबर तक काट ली जाती है । इसमें उष्णकटिबन्धीय फसलें शामिल है, जिसके अन्तर्गत चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का, जूट, मूंगफली, कपास, सन, तम्बाकू, मूंग, उडद, लोबिया आदि की कृषि की जाती है ।
- <u>रबी</u> ये फसलें सामान्यतः अक्टूबर में बोई जाती है और मार्च में काट ली जाती है । इस समय का कम तापमान शीतोष्ण एवं उपोष्ण कटिबन्धीय फसलों के लिए सहायक होता है । इस ऋतु में सिंचाई की आवश्यकता ज्यादा पडती है । इसके अन्तर्गत शामिल प्रमुख फसलें-गेहूँ, जौ, चना, मटर, सरसों, राई आदि है ।
- <u>जायद</u> जायद एक अल्पकालिक एवं ग्रीष्मकालीन फसल है, जो रबी एवं खरीफ के मध्यवर्ती काल में अर्थात् अप्रैल में बोई जाती है और जून तक काट ली जाती है । इसमें सिंचाई की सहायता से सब्जियों, खरबूजा, ककडी, खीरा, करेला आदि की कृषि की जाती है । मूंग एवं कुल्थी जैसी दलहन फसलें भी इसी समय उगाई जाती है । यद्यपि इस प्रकार की पृथक् फसल ऋतुएँ देश के दक्षिणी भागों में नहीं पाई जाती ।

यहाँ का अधिकतम तापमान वर्ष भर किसी भी उष्णकटिबन्धीय फसल (Tropical Crop) की बुआई में सहायक है, इसके लिए पर्याप्त आर्द्रता उपलब्ध होनी चाहिए । इसलिए देश के इस भाग में जहाँ भी पर्याप्त मात्रा में सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध है, एक कृषि वर्ष में एक ही फसल तीन बार उगाईजा सकती है ।

भारतीय कृषि ऋतु

कृषि ऋतु	प्रमुख फसलें	
	उत्तरी भारत राज्य	दक्षिणी भारत
खरीफ (जून से सितम्बर)	चावल, कपास, बाजरा, मक्का,ज्वार, अरहर	चावल, मक्का, रागी, ज्वार तथा मूंगफली
रबी (अक्टूबर से मार्च)	गेहूँ, चना, तोरई, सरसों, जौ	चावल, मक्का, रागी, मूंगफली
जायद (अप्रैल से जून)	वनस्पति, सब्जियाँ, फल,चारा फसलें	चावल, सब्जियाँ, चारा, फसलें

कृषि की समस्याएँ

भारतीय कृषि की प्रमुख समस्याएँ निम्न है

- सिंचाई के साधनों का अभाव भारतीय कृषि मानसून पर निर्भर करती हैक्योंकि यहाँ पर्याप्त सिंचाई के साधनों का अभाव है । कृषि संगणना (2011) के अनुसार, कुल बुआई क्षेत्रफल का केवल 45. 7% भाग पर ही सिंचाई के साधन है शेष 54.3% भाग मानसून पर निर्भर करते है ।
- वित्त का अभाव भारतीय कृषि की समस्याओं में वित्त का अभाव एक प्रमुख समस्या है । आज भी किसानों को कृषि बुआई के समय उन्हें पर्याप्त वित्त की सुविधा नहीं मिल पाती है, जिसके कारण फसलों के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है ।
- खेती का पारम्परिक दृष्टिकोण भारत में आज भी कृषि अधिकांशत परम्परागत तरीके (तकनीक) से ही की जाती है, जिसमें लकडी का हल, पाटा, खुरपी, फावडा आदि प्रमुख रूप से शामिल है । शिक्षा एवं जानकारी के अभाव में अधिकांश किसान कृषि में पुरानी तकनीकों का ही प्रयोग करते है ।
- छोटी तथा बिखरी जोतें भारत में औसत जोतों का आकार बहुत छोटा है साथ ही दूर-दूर बिखरे हुए है । जोतों का छोटे आकार का होने का मुख्य कारण जनसंख्या वृद्धि है ।
- व्यवस्थित विपणन प्रणाली का अभाव भारत में कृषि फसलों के उत्पादन के विक्रय हेतु स्थायी एवं व्यवस्थित कृषि विपणन का अभाव, भारतीय कृषि की एक प्रमुख समस्या है । स्थायी एवं व्यवस्थित कृषि विपणन की व्यवस्था न होने से किसानों को उनकी फसल का उचित मूल्य नहीं मिल पाता ।

जैव विविधता का अर्थ

(Meaning of Biodiversity)

किसी भी सुनिश्चित प्राकृतिक क्षेत्र में पाए जाने वाले जीव-जन्तु तथा पेड पौधों की प्रजातियों की विविधता तथा उस संख्या को उस स्थान विशेष की जैव-विविधता कहते है । जैव विविधता शब्द का प्रयोग कीट वैज्ञानिक ई. ओ. विल्सन ने वर्ष 1986 में जैविक विविधता पर अमेरिकन फोरम के लिए प्रस्तुत प्रतिवेदन में किया था । अन्य शब्दों में पृथ्वी पर उपस्थित जीव-जन्तुओं में पाई जाने वाली विभिन्नता विषमता और पारिस्थितिकी जटिलता जैव-विविधता कहलाती है ।

जैव विविधता के प्रकार

जैव विविधता का सम्बन्ध जैव मण्डल में प्राकृतिक विविधता की मात्रा से है, जिसके आधार पर जैव विविधता को निम्न तीन प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है

1. आनुवंशिक जैव विविधता किसी भी प्रजाति में उपस्थित विविधता कावह भाग जोकि आनुवंशिक कारणों से उत्पन्न होता है । आनुवंशिक जैव विविधता कहलाता है । आनुवंशिक विविधता जैव विविधता का संरक्षण करती है । जब जीव समूहों व पारिस्थितिकी व्यवस्था में परिवर्तन होने लगते हैं तब आनुवंशिक विविधता एक ऐसी क्षमता उत्पन्न करती है, जिससे जैव-विविधता पुनः स्थापित होती है ।
2. प्रजातीय जैव विविधता जैव विविधता जब प्रजातीय स्तर पर हो, तो उसेप्रजातीय जैव विविधता कहते हैं । जैव विविधता का वितरण धरातल परकाफी असमान है । जिन क्षेत्रों में प्रजातीय विविधता अधिक होती है । उसे जैव विविधता का हॉट-स्पॉट कहा जाता है । जैव विविधता, जीव समुदाय की कार्यप्रणाली के सुचारु रूप से संचालन तथा सामुदायिक स्तर के गुणों के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है । प्रजातीय जैव विविधता के सूचकांक तथा मूल्यांकन के लिए इनकी संख्या बहुलता आदि का ज्ञान रखना होता है ।
3. पारितन्त्रीय जैव विविधता पारितन्त्रीय जैव विविधता में पारिस्थितिकी तन्त्र के प्रकार प्राकृतिक आवास, प्रक्रियाओं के मध्य अन्तर आदि को सम्मिलित किया जाता है । प्रत्येक पारितन्त्र में जल चक्र तथा ऊर्जा प्रवाह की पृथक-पृथक् पद्धतियाँ होती हैं । परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न जैव विविधता उत्पन्न होती है । पारितन्त्रीय विविधता का परिसीमन करना मुश्किल और जटिल है, क्योंकि समुदायों और पारितन्त्रों की सीमाएँ सुनिश्चित नहीं होती ।

जैव विविधता का महत्व

जैव विविधता के महत्व को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है

- पारिस्थितिक महत्व पारितन्त्र में कोई भी प्रजाति बिना कारण के न तो विकसित हो सकती है और न ही बनी रह सकती है अर्थात् प्रत्येक जीव अपनी आवश्यकता को पूरी करने के साथ-साथ दूसरे जीवों के पनपने में भी सहायक होता है । जीव व प्रजातीय ऊर्जा ग्रहण कर उनका संग्रहण करती है । कार्बनिक पदार्थ उत्पन्न व विघटित करती है ।
- आर्थिक महत्व जैव विविधता का आर्थिक महत्व भी होता है, क्योंकि यह महत्वपूर्ण संसाधन है । इसका एक महत्वपूर्ण भाग फसली विविधता है जिसे कृषि जैव विविधता भी कहा जाता है । जैव विविधता का उपयोग भोज्य पदार्थों औषधियों और सौन्दर्य प्रसाधन बनाने में किया जाता है । खाद्य फसलें, पशु व वन संसाधन मत्स्य व दवा जैसे संसाधन जैव विविधता के फलस्वरूप ही उत्पन्न होते हैं ।
- सांस्कृतिक महत्व जैव-विविधता ने मानव संस्कृति के विकास में योगदान दिया है, तो मानव समुदायों ने भी आनुवंशिक प्रजातीय व पारिस्थितिकी स्तर पर प्राकृतिक विविधता को बनाए रखने में योगदान दिया है । भारतीय सभ्यता स्थानीय परम्पराओं के माध्यम से अनेक सदियों से प्रकृति का संरक्षण करती है । प्रकृति का संरक्षण प्राचीन दर्शन का एक महत्वपूर्ण अंग है । हमारे देश में अनेक राज्यों में पवित्र-बाग व देवराई हैं, जिनको जनजातीय लोगों ने बचाकर रखा है ।

जैव विविधता की संरक्षण विधियाँ

जैव विविधता के संरक्षण की दो विधियाँ है, स्व–स्थाने (In-situ) एवं बाह्य–स्थाने (ex-situ) ।

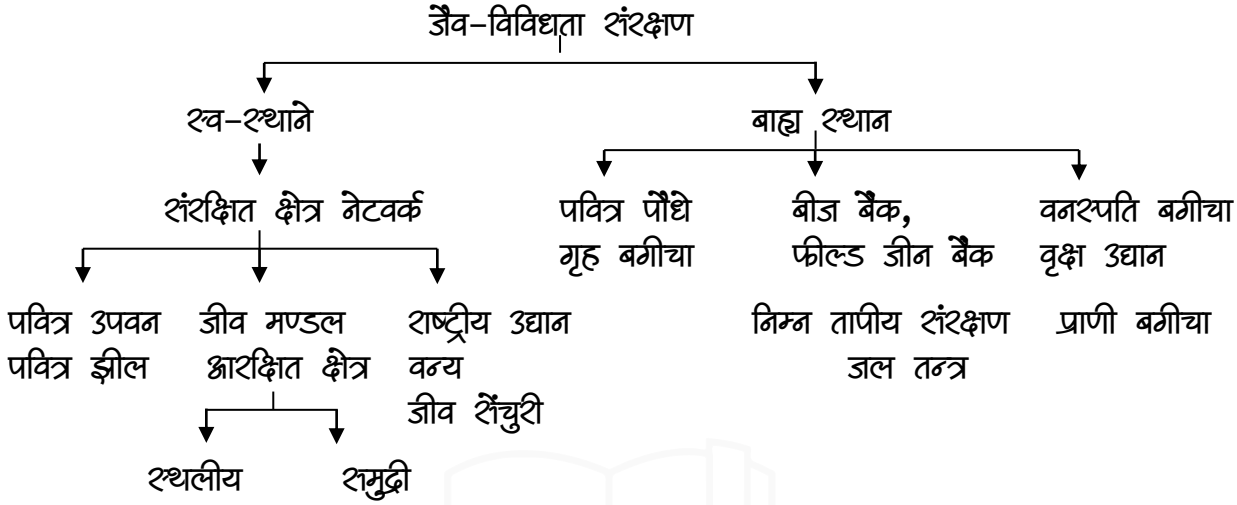

संरक्षण के स्व–स्थाने उपाय

- जब जीव एवं वनस्पति जातियों (In-situ) को उनके प्राकृतिक वास्यक्षेत्र में ही संरक्षण प्रदान किया जाता है, तब उसे स्व–स्थाने (In-side) संरक्षण कहा जाता है । इसमें प्रतिनिधि पारितन्त्रों के सुरक्षित क्षेत्र की विभिन्न माध्यमों से सुरक्षा एवं आवासीय विखण्डों को बनाए रखना सम्मिलित है ।
- स्व–स्थाने संरक्षण के अन्तर्गत प्रमुखतः राष्ट्रीय उद्यान, वन्यजीव अभयारण्य तथा जैवमण्डलीय सुरक्षित क्षेत्र और पवित्र उपवन एवं झीलें आती है ।

संरक्षण के पर–स्थाने उपाय

- पर–स्थाने संरक्षण (Ex-situ Conservation) में वनस्पतियों, उद्यानों, चिड़ियाघर, संरक्षण स्थल एवं जीन, परागकण, बीज, पौधे ऊतक एवं DN A बैंक सम्मिलित है । बीज, जीन बैंक, वन्य एवं कृषीय पौधों के जर्मप्लाज्म को कम तापमान तथा शीत प्रकोष्ठों में संग्रहित करने का सरलतम उपाय है । आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण सामान्य वृद्धि दशाओं में क्षेत्रीय जीन बैंकों में किया जाता है । अलिंगी प्रजनन से उत्पन्न की गई जातियों एवं वृक्षों के लिए क्षेत्रीय जीन बैंक विशेष रूप से प्रयोग किए जाते है ।
- आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण सामान्य वृद्धि दशाओं में क्षेत्रीय जीन बैंकों में किया जाता है । प्रयोगशाला में संरक्षण, विशेष रूप से द्रवीय नाइट्रोजन में –196°C तापमान पर क्रायोजेनिक संरक्षण कायिक जनन द्वारा उगाई गई फसलोंय जैसे–आलू के लिए विशेष रूप से उपयोगी है ।
- पादप स्पीशीज में बीज (Seed), परागकण (Pollen Grains), कायिक प्रवर्द्धन भाग (Vegetative Propagation), कार्म (Corm), बल्ब (Bulb), कन्द (Heber), ऊतक (Tissue) इत्यादि इस प्रकार के जर्मप्लाज्म बैंकों में एकत्रित और संचित किए जाते है ।

देशीय ज्ञान प्रणालियाँ

(Indigenous Knowledge Systems)

देशीय या स्वदेशी ज्ञान का आशय समाज द्वारा विकसित समझ, कौशल और दर्शन ज्ञान से होता है, जो उनके प्राकृतिक परिवेश के साथ लम्बे बातचीत अर्थात् लम्बे संघर्ष के पश्चात् विकसित होता है । इससे ग्रामीण तथा स्थानीय लोगों के दिन-प्रतिदिन के जीवन के मूलभूत पहलुओं के बारे में जानकारी मिलती है । इस प्रकार यह कहा जाता है कि यह ज्ञान प्रणाली एक सांस्कृतिक परिसर का अभिन्न अंग होता है, जो भाषा, वर्गीकरण की प्रणाली, संसाधन का उपयोग करने वाली प्रथाओं, सामाजिक सम्पर्क की विभिन्न पहल, अनुष्ठान तथा आध्यात्मिकता को ज्ञान के इस भण्डार में समाहित करता है ।

इस प्रकार ज्ञान के इस व्यापक रूप से प्रणालियों का एक क्रमबद्धतापूर्वक ज्ञान प्राप्त हो जाता है, जिसे ज्ञान प्रणालियों के रूप में जाना जाता है । अतः प्रत्येक देश की अपनी एक सभ्यता व संस्कृति होती है जिसके आधार पर उस देश के भूतकाल, वर्तमान व भविष्य के बारे में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । इस प्रकार देशीय ज्ञान प्रणालियों के माध्यम से विश्व के देशों का स्थानीय स्तर पर अध्ययन विभिन्न रूपों में किया जाता है । ऐसी ज्ञान की विभिन्न प्रणालियाँ निम्नलिखित है

- <u>सामाजिक प्रणाली</u> यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी देश की सामाजिक व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । सामाजिक व्यवस्था से तात्पर्य किसी देश की रीति-रिवाज, परम्पराएँ, जाति, धर्म, संस्कार व्यक्तित्व आदि का ज्ञान है । इसके द्वारा भारतीय समाज के अंगों व क्रिया प्रणाली का ज्ञान होता है ।
- <u>सांस्कृतिक प्रणाली</u> इस प्रक्रिया के अन्तर्गत देश की सभ्यता व संस्कृति की जानकारी प्राप्त होती है, जिसके द्वारा उन सांस्कृतिक मूल्यों व आदर्शों का जान होता है । उस देश में सांस्कृतिक व्यवस्था व संस्कृति का आदर्शात्मक स्वरूप क्या है, किस प्रकार संस्कृति का जन्म हुआ तथा संस्कृति ने किस प्रकार अपने आदर्शों को प्राप्त किया आदि ।
- <u>धार्मिक प्रणाली</u> वह प्रणाली जो धार्मिक आदर्शों से सम्बन्धित है और यह दर्शाती है कि अमुक देश में किस प्रकार की धार्मिक व्यवस्था है, किस प्रकार केधार्मिक उद्देश्य है तथा धर्म सार्थक स्वरूप आदि का ज्ञान प्राप्त होता है ।
- <u>आर्थिक प्रणाली</u> इस प्रणाली के अन्तर्गत देश विशेष की आर्थिक क्रियाओं वकार्य प्रणालियों का अध्ययन किया जाता है ।

देशीय ज्ञान प्रणालियों की विशेषताएँ

देशीय ज्ञान प्रणालियों की विशेषताएँ निम्नलिखित है

- देशीय ज्ञान प्रणालियाँ को जानने का अनूठा तरीका है, जिससे विश्व केसांस्कृतिक विविधता की जानकारी प्राप्त होती है ।
- यह ज्ञान प्रणालियाँ देशों के स्थानीय रूप में उपयुक्त निरन्तर विकास के लिएएक आधार प्रदान करती है ।
- देशीय ज्ञान में स्थानीय समूहों का अनुभव शामिल होता है, जिसका अन्य स्थानपर प्रतिफलित भी होने की सम्भावना होती है ।